

प्रज्ञा लघु पुस्तकमाला - ४८

आधुनिकता की दौड़ में नारी आदर्शों से न गिरे



- श्रीराम शर्मा आचार्य

आधुनिकता की दौड़ में नारी आदर्शों से न गिरे

पुराने रीति-रिवाजों, मूढ़ अविवेकपूर्ण मान्यताओं, विश्वासों में जकड़े रहने से समाज को भारी क्षति उठानी पड़ती है। आधुनिकता के नाम पर अंधानुकरण की प्रवृत्ति भी कम घातक नहीं है। भारतीय नारियाँ इन्हीं दो छोरों पर खड़ी हैं। नारियों का एक वर्ग ऐसा है जो परंपराओं को आप्तवचन मानकर अविवेकपूर्ण होते हुए भी उन्हें किसी कीमत पर छोड़ने को तैयार नहीं है। शिक्षित नारियों में दूसरा वर्ग है उन नारियों का जिनके मन में प्रत्येक परंपरा रीति-रिवाज के प्रति विद्रोह है। वह विवेकयुक्त अथवा अविवेकपूर्ण किसी भी पुराने प्रचलन को अपनाने को तैयार नहीं है।

अपने देश का वर्तमान नारी समाज इस समय दो भागों में विभाजित है। शिक्षा, संस्कार, प्रवृत्तियों और विचारों के मामले में उन्हें दो परस्पर विरोधी

वर्गों में रखा जा सकता है। पहला वर्ग वह है जो पिछले समय से चला आ रहा है और घर परिवार के बाहर की बात उसके लिए गौण ही नहीं अनावश्यक और वर्जनीय भी है। गाँवों और शहरों के अनपढ़, अशिक्षित परंपरावादी परिवार की स्त्रियों को आज भी उन स्थितियों में रहना पड़ता है, जिनमें पहले से ही वह रहती चली आ रही है। उसे अपने पति, परिवार के अन्य सदस्यों तथा बच्चों की सेवा-सुश्रूषा और देख-रेख, पालन-पोषण तक ही अपने को सीमित रखना पड़ता है। घर की चौखट उसकी लक्ष्मण रेखा है और उसके बाहर कदम रखना उसके लिए अनुचित है।

दूसरा वर्ग वह है जो शिक्षित और आधुनिक होने का दंभ भरते हुए स्त्री को हर प्रकार की आजादी देने की वकालत करता है। हर प्रकार की आजादी से उसका मतलब यह नहीं है कि स्त्री अपने मामले में स्वयं ही निर्णय ले। वरन यह है कि वह उन सब वर्जनाओं को तोड़े जो परंपरागत गृहणी के लिए

आवश्यक समझी जाती रही हैं। इस धारणा में कुछ अच्छाइयाँ भी हैं तो कुछ बुराइयाँ भी। अच्छाइयाँ इससे संबंधित हैं कि नारियों को परंपरा से चली आ रही रूढ़ियों और वर्जनाओं का ही कायल नहीं रहना चाहिए, उसे स्वतंत्र बुद्धि से सोचना भी चाहिए। स्वतंत्र बुद्धि के रूप में जिस रीति-नीति को प्रधानता दी जाती है, वह एक ऐसी उन्मुक्त नारी का चित्र प्रस्तुत करती है जो रहन-सहन और व्यवहार में बहुत कुछ पश्चिमी जीवन की अनुगामी है। विवेक बुद्धि से लिए गए निर्णय और उन्हें क्रियान्वित करने का साहस यदि रूढ़ियों से न बँधने वाली नारी की विशेषता बनता, तो महिलाएँ सचमुच शक्तिस्वरूपा बनकर सामने आतीं, पर आधुनिक नारी पुराने परिवार की मात्र प्रतिद्वंद्वी प्रतिक्रिया मात्र बनती जा रही है, जिसे किसी भी तरह उचित नहीं कहा जा सकता।

परंपरा व्यामोह से मुक्त नारी से बहुत कुछ आशाएँ की जाती हैं, की जानी भी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार उसकी योग्यता और क्षमता का परिवार

की ही सेवा में लगे रहकर कुंद हो जाने की स्थिति से बचा जा सकता है। महिलाओं की कार्यक्षमता और योग्यताओं से इनकार नहीं किया जा सकता। विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियाँ जो कर दिखा रही हैं, उसने यह भ्रांतिपूर्ण मान्यता झुठला दी है कि कार्यक्षमता और दक्षता के मामले में वे पुरुषों से कम हैं। बल्कि कई मामलों में तो उनके कीर्तिमान पुरुषों से भी ऊँचे हैं। यदि उन्हें घर के चौके-चूल्हे तक ही प्रतिबंधित कर दिया जाए तो समाज उनसे मिलने वाले लाभ से वंचित हो जाता है। परंपरा व्यामोह के कारण अब भी ऐसी स्त्रियाँ अपनी प्रतिभा को घर की चहारदीवारी में सड़ने दे रही हैं। उन्हें आगे लाने की आवश्यकता है। यदि यही स्थिति बनी रही तो बदलते युग के संदर्भों में, बढ़ती व्यस्तता और तीव्रगति से भागती सभ्यता की दौड़ में समाज की आधी शक्ति का भार ढोते-ढोते वह आधी शक्ति भी चुकने लगेगी और यह हानि पिछली हानियों की तुलना में कई गुना अधिक होगी। अतः उचित यह है कि अविवेकपूर्ण

परंपरा का मोह टूटे और महिलाएँ अपनी प्रतिभा का लाभ देश और समाज को दें, लेकिन प्रगतिशीलता का यह अर्थ भी नहीं है कि उन दायित्वों को भी फेंक दिया जाए जो स्त्रियाँ ही सँभाल सकती हैं। जैसे गृहस्थ दायित्वों को ही लें। गृहस्थ पुरुष और स्त्री की साझी व्यवस्था है। पुरुष का दायित्व बाहरी कार्यों को निबटाना है तो स्त्री के जिम्मे परिवार की अंदरूनी व्यवस्था है। पुरुष का अधिकांश समय गृहस्थ के दायित्वों को बाहर क्षेत्र से पूरा करने में बीतता है तो स्त्रियाँ परिवार की आंतरिक व्यवस्था को सँभालती हैं। खाली समय दोनों के पास बचता है। अतः उसका उपयोग अपनी योग्यता बढ़ाने और समाज की सेवा करने में किया जा सकता है, लेकिन स्वयं को परंपरागत गृहिणी से अलग देखने वाली आधुनिक नारी परिवार को अनपेक्षित भार समझकर वहन करती है या उससे कतराने सी लगती है।

शिक्षित और पढ़े-लिखे समुदाय की स्त्रियाँ घर में अपने बच्चों की देख-रेख की अपेक्षा नौकरी

करना अधिक अच्छा समझती हैं। परिवार की आर्थिक स्थिति इससे मजबूत बन सके, यही सामान्यतः नौकरी का ध्येय रहता है, लेकिन कई आधुनिक विचार वाली स्त्रियों का यह दृष्टिकोण प्रमुख रहता है नौकरी के पीछे कि हम आर्थिक दृष्टि से पुरुष की बराबरी करें और अपनी आवश्यकताओं के लिए उस पर निर्भर न रहें। पुरुष से प्रतिस्पर्द्धा तक ही बात होती तो भी कोई खास बात नहीं रहती, लेकिन स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा की अपेक्षा प्रतिद्वंद्विता का भाव जब आ जाता है तो पति-पत्नी के बीच स्नेह और प्रेम के मधुर सूत्र चटखने लगते हैं। परिवार की आर्थिक सहायता के लिए तो गाँव की स्त्रियाँ और मजदूर गृहणियाँ भी काम करती हैं, पर उनमें प्रतिद्वंद्विता जैसी कोई बात नहीं रहती। जबकि प्रतिद्वंद्विता की भावना से प्रेरित होकर शिक्षित आधुनिका अपने पति का स्वस्थ सहयोग भी ठुकराकर अपने बूते ही सब कुछ करने की होड़ लगाए रहती है। घर में चलने वाले इस प्रकार के संघर्ष और कलह का बच्चों के

मन पर भी गलत प्रभाव पड़ता है। माँ की ममतामयी छत्रछाया और स्नेह वात्सल्य का अभाव उनकी हार्दिक अपेक्षाओं को तो पूरा ही नहीं करता है। पति-पत्नी के बीच चलने वाला टकराव और संघर्ष उनमें कई कुंठाओं को भी जन्म देता है।

पुराने परिवारों में नारी के स्थान की हीन प्रतिक्रियास्वरूप आधुनिकता की मनोवृत्ति पुरुष के प्रतिशोध के आधार पर खड़ी होती है। पिछले समय में स्त्री को घर में रहने के लिए प्रतिबंधित कर उसे परिवार तक ही सीमित रहने की परंपरा थी, तो आज की नारी बाहर को ही अपना कार्यक्षेत्र मानने के लिए उतारू है। इस प्रतिक्रिया का परिणाम तथाकथित आधुनिकता के लिए घर के प्रति पूर्ण उपेक्षा का रवैया अपनाने के लिए प्रेरित करता है। पहले जहाँ शील-शुचिता को सर्वोपरि महत्त्व दिया जाता था, वहीं स्वतंत्र विचारधारा के रूप में प्रत्यक्षतः उन्मुक्त जीवन भले ही न जिया जा रहा हो, पर बहुत कुछ वैसा हो रहा है, जिसमें नारी स्वयं को आकर्षण का केंद्र

बनाने के लिए लालायित दिखती है। रहन-सहन, साज-श्रृंगार, वेशभूषा, फैशन और आचार-व्यवहार में तथाकथित प्रगतिशील नारी सड़क चलते लोगों को अपनी ओर देखते पाना शान समझती है। फिल्म, विज्ञापन, पत्र-पत्रिकाएँ, साहित्य और आधुनिक नारी पर वैचारिक गोष्ठियों में जो चित्र बनता है, प्रतिपादित किया जाता है, उसमें नारी के कमनीय रूप को ही अधिक मुखरता मिलती है। कहा भले ही कुछ भी जाता हो, पर स्त्री को एक दर्शनीय और भोग्य वस्तु बनाकर जो रूप आधुनिकता के नाम पर दिया जाता है, उससे यह जरा भी नहीं लगता कि नारी स्वतंत्र हो रही है। अंतर कुछ जरूर है और वह अंतर यह है कि पहले नारी को घर की वस्तु समझा जाता था, अब उसे सार्वजनिक प्रतिष्ठा दी जा रही है।

आधुनिक नारी, नारी संबंधों, मान्यता और धारणा की दूसरी अति पर है। सीमित कार्य, सीमित जीवन और सीमित छूट के स्थान पर बाहरी कार्य, बाहरी जीवन और बाहरी छूट ही महिलाओं की

स्थिति में परिवर्तन का प्रतीक नहीं है, लेकिन ऐसा ही हो रहा है और वह इस कारण कि रहन-सहन तथा आचार-विचार के साथ हमारे सोच-विचार का ढंग भी पश्चिम की नकल बना हुआ है। पश्चिम की जो परिस्थितियाँ हैं और उन संदर्भों में वहाँ जो परिवर्तन होते हैं, उनकी आवश्यकता और व्यावहारिकता वहाँ भले ही कितनी भी हो, हमारे यहाँ उसकी हूबहू नकल कभी भी लाभदायक नहीं हो सकती। वहाँ के तथ्यों से कुछ सीखा तो जा सकता है, पर उसी आधार पर परिवर्तन का चक्र यथावत नहीं घुमाया जा सकता।

आधुनिकता के लिए हम यह सोचने और मानने को स्वयं से विवश हैं कि पश्चिम हमसे आगे है, इसलिए उनके समान हम सभी भी आगे हो सकते हैं जबकि हम उनका अनुकरण करें। पश्चिम में विज्ञान ने प्रगति की और वहाँ अधिकांश खोजें हुईं। यह सही हो सकता है और यह भी सही हो सकता है कि वहाँ के लोगों ने इस कारण तरक्की

की, परंतु उन्हीं परिणामों को अनुकरण से प्राप्त नहीं किया जा सकता। प्रगतिशीलता या उन्नति के प्रयासों का अर्थ अनुकरण नहीं है। बल्कि अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार उनका तालमेल बिठाकर किए गए प्रयास ही प्रगति का मूल हैं। भारतीय परिवेश में पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण न खपने की वजह से पुरानी स्त्रियाँ आधुनिक और उन्मुक्त महिलाओं को हास्यास्पद रूप में देखती हैं। संभवतः इसकी प्रतिक्रिया तथाकथित आधुनिका के मन में भी पुरानी स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखने के रूप में होती है।

शिक्षा एक विभूति है और शिक्षित विभूतिवान। यदि शिक्षित स्त्रियाँ अपनी क्षमता का सही उपयोग करें तो उनके लिए यह एक कर्तव्य बन जाता है कि वे परंपरा और रूढ़ियों के बोझ तले दबी भारतीय नारी को उस दुःस्थिति से उभारने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न करें, पर अनुकरण वृत्ति का अभिशाप कहें या आधुनिकता का दंभ तथाकथित प्रगतिशील स्त्रियाँ

उनकी ओर देखना भी नहीं चाहतीं, उनसे बात करना या उन्हें सहयोग देना तो दूर रहा।

अति के एक छोर पर जिस परंपरावादी नारी की बात कही गई है उसे भी आज के संदर्भों में जरा भी उचित नहीं कहा जा सकता। घर को ही उनका कार्यक्षेत्र मान लेने के कारण उसके पालन-पोषण पर भी समुचित ध्यान नहीं दिया जाता और शिक्षा-दीक्षा पर भी नहीं। पुत्र की अपेक्षा कन्या पर कम ध्यान देने की बात निंदनीय ओछी वृत्ति है, पर शिक्षा-दीक्षा पर ध्यान न देने का मुख्य कारण यह है कि परिवार में इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती। खाना पकाने और कपड़े धोने में शिक्षा का क्या उपयोग? बच्चों को दूध पिलाने में और खाना खिलाने तथा पति के पाँव दबाने में शिक्षा क्या काम आएगी? आदि प्रश्न लड़कियों के पढ़ाई-लिखाई को अनावश्यक कर देते हैं। यदि उसे भी पुत्र की तरह परिवार की भावी जिम्मेदार सदस्य समझा जाए, लड़के की तरह उसके विकास की उपयोगिता देखी

जाए तो लड़कियों को शिक्षा दिलाना जरूरी लगेगा, लेकिन अति के पहले छोर पर रहने वाले परिवार अपनी दृष्टि को इतनी उदार बनाने के लिए राजी नहीं होते।

शिक्षित आधुनिका जहाँ परंपरा के अंध विरोध और निरंकुश प्रतिक्रिया से ग्रस्त है तो अशिक्षित परंपराभक्त नारी चले आ रहे रीति-रिवाजों से चिपटे रहने में ही भलाई देखती है। इन दोनों भ्रांतियों को तोड़ने की आवश्यकता है। आवश्यकता है यह उदार विवेक बरतने की कि नारी प्रगतिशीलता के नाम पर न अंधानुकरण करे और न पुरुष की प्रतिद्वंद्वी हो वरन दोनों के सघन सहयोग द्वारा समाज को आगे बढ़ाने की आस्था से उन महिलाओं को ऊँचा उठाने की कोशिश करें जो अति के पहले छोर पर ही रही हैं या दूसरे छोर पर जीने को विवश हो रही हैं। एक बात जो अच्छी है, वह यह कि नारी समाज को समय की प्रगति के सामाजिक क्रूर बंधनों से धीरे-धीरे छुटकारा मिलता जा रहा है। बहुत पिछड़े, अशिक्षित, अहंकारी

और संकीर्ण अनुदार लोगों में ही अब घूँघट, परदा प्रथा की कठोरता शेष रह गई है। बाकी समझदार लोग अब अपनी बच्चियों को भी शिक्षा दे रहे हैं और उन्हें घर से बाहर काम करने के लिए जाने देने के प्रतिबंध भी कम कर रहे हैं। महिलाओं का उत्साह और रुझान भी इसी दिशा में है। औचित्य और न्याय का तकाजा भी यही है। प्रगतिशील विचारधारा का प्रतिपादन भी इसी दिशा में है। स्वतंत्रता और समानता का, सम्मान एवं औचित्य का जो व्यापक समर्थन हो रहा है उसने भी नारी के ऊपर लदे हुए पिछले सामंती बंधनों को निरस्त करने में सहायता ही की है। इन अनेक कारणों के मिल जाने से नारी की स्वतंत्रता का एक नया युग आरंभ हुआ है। अंधे मानव समाज को सामाजिक पराधीनता के अवांछनीय बंधनों से इस प्रकार मुक्ति पाते देखकर सर्वत्र प्रसन्नता और संतोष की ही अभिव्यक्ति होनी चाहिए, पर दुर्भाग्य की करामात तो देखिए वह बंधन पिछली खिड़की से छद्मवेश बनाकर फिर घुसपैठ करने में

लग गया है और वह नारी पराधीनता के लिए नए किस्म के जाल बंधन बुनकर फिर ले आया है। पहले लोहे की जंजीरों से कैदी बाँधे जाते थे, अब सोने की जंजीरों या रेशमी रस्सों से उन्हें बाँधा जाने लगे तो इसे कोई प्रगति भले ही कहता रहे वस्तुतः यह बंधन उतने ही दुःखद रहेंगे जितने कि लोहे वाले समय में थे।

जहाँ नारी फैशनपरस्त, भड़कीली और निर्लज्ज होती दिखाई पड़े, वहाँ वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए उसे दोष नहीं दिया जा सकता। यह उसकी विवशता है। यह उसके भोलेपन का शोषण है। प्रगतिशील आधुनिक चेतना और युगानुरूप नवचिंतन के प्रतिनिधि होने के दावेदार पत्र-पत्रिकाओं में जो महिलाओं के लिए सामग्री प्रस्तुत की जाती है उसमें ले-देकर या तो पाकविज्ञान, गृहसज्जा की बातें होती हैं या फिर सुंदर कैसे बनें, आकर्षक कैसे बनें, सौंदर्य को कैसे निखारें, सौंदर्य प्रसाधन का प्रयोग कैसे करें, कैसे वस्त्र चुनें कि आप आकर्षक दिखें

आदि यही सब अपनी त्वचा की लुनाई और शरीर के आकर्षण को बढ़ाने वाली बातें रहती हैं।

दुःखद आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि इन स्तंभों में ऐसी सामग्री प्रस्तुत करने वाली भी महिलाएँ ही होती हैं। समझ में नहीं आता कि इसे प्रगतिशीलता कहें या अगतिशीलता। इसे नारी की कमजोरी कहें या भूल या बेखबरी, किंतु यह सही है कि नारी की इस सौंदर्य और आकर्षण की ललक को लेकर लोगों ने उसे कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया है।

आज आकर्षक दीखने के फेर में शरीर के उन उभारों को जो नारी की शील-संपदा हैं, तंग और तंगतर वस्त्रों में बाँधकर प्रदर्शित करने का फैशन चल पड़ा है। अधिकाधिक अंगों को खुले रखने का जो फैशन चल पड़ा है, क्या यह शील से च्युत होना नहीं है। समझ में नहीं आता कि इस शीलच्युत आंगिक प्रदर्शन को क्या कहा जाए ?

लोग फूहड़ न कहें, स्वयं को भी अपने वेश-विन्यास से मानसिक व बौद्धिक अपरिपक्वता, हीनता का बोध न हो, इसके लिए ढंग के जलवायु और स्वास्थ्य के अनुसार साफ कपड़े पहनना तो ठीक है, किंतु शरीर को सजाने और आकर्षक बनाने के लिए ऐसे वस्त्र पहनना जिससे कि लोगों का ध्यान आकर्षित हो, यह कहाँ की समझदारी है ?

कुछ लोग कह सकते हैं कि इससे व्यक्तित्व निखरता है। व्यक्तित्व का अर्थ होता है कि जो कुछ आप हैं, उसकी झलक आपके संपर्क में आने वाले को मिल जाए। इसका शरीर-प्रदर्शन से कोई संबंध नहीं है। जो कुछ हमारे भीतर है, उसका आभास संपर्क में आने वाले को होना ही चाहिए। इसके लिए आपका व्यवहार, बोलचाल, भाषा, नम्रता, शिष्टाचार, शालीनता, सौम्यता आदि पर्याप्त हैं। कोई व्यक्ति अशिक्षित है तो वह कैसे ही अच्छे वस्त्र क्यों न पहन ले उसके सामने जब कुछ पढ़ने का अवसर

आएगा उसकी कलाई खुल जाएगी, उसके वस्त्र उसकी कमियों को ढाँप नहीं पाएँगे।

नारी को आकर्षक बनने के फेर में पड़ने की भूल करने की बजाय अपने गरिमामय स्वरूप को सामने रखना चाहिए। कोई भी देखे तो उसके मन में श्रद्धा, आदर और अच्छे भाव उत्पन्न हों। इससे समाज में मानसिक विकार उपजाने की कम ही गुंजाइश होगी।

आज की प्रगतिशील नारी को पुरुष की समानता पानी है। यही नहीं उससे भी ऊँचा उठना है। इसके लिए उसका ध्यान आकर्षक व सुंदर बनने जैसी व्यर्थ की बातों पर टिकने की अपेक्षा नारी जाति के समग्र विकास पर और उसके वास्तविक परिचय पर टिकना चाहिए। जब वह पुरुष के बराबर है तो फिर अपने आप को अलंकृत करके किस अभाव की पूर्ति करना चाहती है। उसके व्यक्तित्व एवं गुणों में उसके वास्तविक स्वरूप को देखना चाहिए।

नारी जो कुछ है उसका वही स्वरूप सामने लाने की आज सबसे बड़ी आवश्यकता है। शारीरिक

बल का युग लद चुका, अब तो मानसिक बल का वर्चस्व स्थापित होता जा रहा है। इस बल में नारी पुरुष से किसी भी प्रकार कम नहीं है। समय के साथ उसे भी आगे जाना है और उन जाल-जंजालों को तोड़ फेंकना है जो पुरुष ने उसके लिए बिछाए हैं। यह आकर्षक बनने का नवीनतम जाल बड़ा भयंकर है। इस जाल में वह स्वेच्छा से फँसी जा रही है।

शरीर को सुंदर व आकर्षक दिखाने के फेर में हम अपने गुणों का विकास करने की ओर से उदासीन हो जाते हैं। कई सफल व्यक्ति जो दिखने में अनाकर्षक थे, वे अपने इस स्वरूप को स्वीकार कर गुणों एवं व्यक्तित्व के विकास में लग गए, जिससे वे उन लोगों से आगे निकल गए जो अपने आप को सुंदर मानते थे और उसी में अपने को पूर्ण मान रहे थे। कोई महिला काली है तो वे मेकअप के द्वारा गोरी नहीं बन सकती, किंतु यदि वे अपने उन गुणों को विकसित करने में जुट जाती हैं जो उन्हें लोकप्रिय बना सकते हैं तो वह सुंदर महिलाओं से बाजी मार जाती है।

नारी की अपनी एक गरिमा है। वह पुरुष की जननी है। जननी अपने सौंदर्य के बल पर नहीं मातृत्व के बल पर उसकी श्रद्धाभाजन बनती है। अपनी माता के झुर्रियों भरे पोपले मुँह और झुकी हुई कमर वाले जरा-जर्जर शरीर, माँ से बेटे को कितना प्रेम होता है कि वह उसके पास आते ही दुनिया भर की खुशियाँ पा लेता है। नारी भी माँ है। वह उस शीतल वृक्ष की तरह है, जहाँ हर कोई पथिक सुख, शीतलता पाता है उसकी क्लांति मिट जाती है। अखंड, रुक्ष और उत्तप्त पौरुष नारी की स्नेह छाया में आकर तृप्ति, सुख, संतोष पाता है। उसका यह स्वरूप कतई दीपशिखा सा नहीं हो सकता। वह तो शील समन्वित गरिमामय स्वरूप होता है, जिसमें उसकी दया, ममता, करुणा, स्नेह, सहनशीलता, धैर्य आदि का संपूर्ण विकास दृष्टिगत होता है। दुनिया उसे किसी भी रूप में देखना चाहे, वह अपने उसी कल्याणकारी स्वरूप को सामने रखेगी तभी उसका और सबका हित हो सकेगा।

आज जो छेड़छाड़, शीलहरण आदि की घटनाएँ बढ़ रही हैं, उसके पीछे नारी की आकर्षक दिखने, फैशनपरस्ती की ओर भागने की भूल भी बहुत बड़ा कारण है। जहाँ यह प्रवृत्ति जितनी अधिक पनपी है वहाँ ये अपराध भी बढ़े हैं। अमेरिका में फैशनपरस्ती व विज्ञापनबाजी अधिक है तो वहाँ पर शीलहरण के अपराध भी सबसे अधिक होते हैं। नारी को अगले दिनों समाज में समानता का स्थान पाना है, किंतु यह प्रदर्शन उसकी असुरक्षा को निरंतर बढ़ाता जा रहा है। पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने के लिए पहली आवश्यकता अनाकर्षक बनना है। पुरुष पुरुष के प्रति आकृष्ट नहीं होता क्योंकि वहाँ उसे कोई वैचित्र्य दिखाई नहीं देता, किंतु नारी में उसे वैचित्र्य, आकर्षण इसलिए नजर आता है कि वह आज तक उसे अपनी इच्छा के अनुसार चलाता आया है, उसके आकर्षक और सुंदर बने रहने में ही वह अपना लाभ देखता आया है, किंतु अब इस दीवार को तोड़ देना ही श्रेयस्कर है।

प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली हो। जो भी उसके निकट संपर्क में आए वह उससे प्रभावित-आकर्षित हुए बिना न रहे। इसके लिए उसकी क्षमताएँ, योग्यताएँ, व्यवहार, सद्गुण और सद्विचार ही वे अलंकरण हो सकते हैं जो उसके व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाएँ, शारीरिक सौंदर्य नहीं, किंतु आजकल आधुनिकता के नाम पर लोग विशेषकर महिलाएँ यह समझने लगी हैं कि व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने के लिए शारीरिक सौंदर्य प्रमुख होता है।

शारीरिक सुंदरता सबको नहीं मिलती। व्यक्तित्व को प्रभावशाली दिखने में यदि शारीरिक सौंदर्य आवश्यक होता तो ईश्वर सभी को वह प्रदान करता। उसने सभी को शरीर के आवश्यक अंग आँख, कान, नाक, हाथ, पैर दिए हैं। शारीरिक सौंदर्य भी उतना ही आवश्यक होता तो वह सबको देता। सौ में से मुश्किल से एक-दो व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जो लूले-लँगड़े या अंधे हों, किंतु गौर वर्ण और चेहरे

की सुंदरता वाले सौ में से मुश्किल से दस-पंद्रह व्यक्ति मिलेंगे। इससे स्पष्ट है कि त्वचा का रंग और चेहरे का सौंदर्य व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने के लिए बहुत आवश्यक नहीं है।

जो महिलाएँ आधुनिकता के नाम पर इस भ्रम-जाल में फँसकर सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग कर स्वयं को आकर्षक बनाने का प्रयास करती हैं, विवेक दृष्टि से देखा जाए तो उसे इस युग का एक अंधविश्वास ही कहा जाएगा।

व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने के लिए मात्र चेहरे की सुंदरता व त्वचा का रंग ही पर्याप्त नहीं है। कोई स्त्री काली है तो वह अपने चेहरे पर सौंदर्य प्रसाधन लेपकर गोरी नहीं बन जाती, किंतु वह अपने गुणों के अभिवर्द्धन और व्यवहार को सुंदर बनाने का प्रयास करे तो निश्चित रूप से अपने व्यक्तित्व को कहीं अधिक प्रभावशाली बनाकर सुंदर स्त्रियों से बाजी मार सकती है। सुंदर विचार और भव्यभाव व्यक्ति को लोकप्रिय और प्रभावशाली बनाते

हैं। आंतरिक सुंदर भावों की अभिव्यक्ति प्रफुल्लित चेहरे द्वारा स्पष्ट झलकती रहे तो व्यक्तित्व की प्रभा छिटके बिना नहीं रहती।

महिलाएँ इसी अंधविश्वास के कारण कि सौंदर्य प्रसाधनों के लेप से वे सुंदर दीखने लगेंगी, चेहरे पर तरह-तरह के लेप करके और भी हास्यास्पद बन जाती हैं। यह बनावटी रूप टिकता भी कितनी देर है? जरा सा हाथ लगे तो पाउडर पुछ जाए, जरा सा पसीना आ जाए तो चेहरे पर चित्रकारी दीखने लगे।

आजकल पर्सनल्टी और व्यक्तित्व से पुरुषों के लिए प्रायः हृष्ट-पुष्ट और रोबदार व्यक्तित्व तथा स्त्रियों के लिए सुंदरता व शारीरिक गठन का ही अर्थ लगाया जाने लगा है। शरीर को प्रमुखता देने के कारण मेकअप का अंधविश्वास ही पाया है। कहीं बाहर जाना हो तो दर्पण के सामने बैठकर चेहरे की लीपा-पोती करने, रंग-रोगन, पाउडर आदि लेपने में कोई-कोई महिलाएँ तो घंटों लगा देती हैं। वस्त्रों के चुनाव से लेकर आइब्रो की कमान तानने, वेश के

साथ लिपस्टिक, बिंदी और नेल-पालिश के रंग चुनने और त्वचा की टाइप की जानकारी देने वाले पत्र-पत्रिकाओं के स्तंभ और कॉस्मेटिक्स बनाने वाली बड़ी-बड़ी फर्मों के आकर्षक विज्ञापन और भी सहायक होते हैं।

इस मेकअप महाविज्ञान से आखिर लाभ क्या ? जितना समय इस लिपाई-पुताई में लगता है, आज के महँगाई के जमाने में जहाँ खाने को तेल भी नसीब नहीं होता तो चेहरे पर लेपने के लिए फाउंडेशन क्रीम, लोशन, पाउडर, स्नो आदि पर कितना धन व्यय होता है, घंटों आइने के सामने बैठकर मेकअप में कितना श्रम फालतू जाता है, साथ ही साथ स्वास्थ्य का नाश भी कम नहीं होता। ये सब उपलब्धियाँ हानि की मदों में ही जाती हैं, लाभ के नाम पर कुछ भी नहीं होता।

अपना अमूल्य समय, श्रम और धन नष्ट करने के बदले मिलती है—स्वास्थ्य हानि। चेहरे पर विभिन्न प्रकार के रंग-रोगन लगाने से त्वचा के रोम छिद्र बंद हो जाते हैं और चर्म रोगों की उत्पत्ति होने लगती है।

जहाँ तक शारीरिक सौंदर्य का प्रश्न है, वह भी स्वास्थ्य पर निर्भर है न कि सौंदर्य प्रसाधनों पर। जो सुडौल है वह सुंदर दीखेगा ही और एक बीमार व्यक्ति चाहे कितना ही गोरा हो उसके चेहरे पर मुरदनी ही छाई रहेगी। अतः स्वास्थ्य सुधार की बात तो समझ में आती है, यथोचित आहारसंयम, व्यायाम द्वारा शरीर को सुंदर सुपुष्ट बनाने की बात भी समझ में आती है, पर ऊपर से रंग-रोगन पोतने की कतई नहीं।

सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग करने वाली महिलाएँ शायद इस ओर से अनभिज्ञ ही हैं कि इनके उपयोग से उन्हें कितनी स्वास्थ्य-हानि, धन-हानि उठानी पड़ती है। सौंदर्य प्रसाधनों के उपयोग से समय, श्रम, धन और स्वास्थ्य की कितनी हानियाँ उठानी पड़ती हैं फिर भी महिलाएँ इनका अंधाधुंध प्रयोग बढ़ाती ही रहें तो उसे अंधविश्वास नहीं तो और क्या कहा जा सकता है ?

पाश्चात्य देश की नारियाँ इन प्रसाधनों से बेजार हो चली हैं जिनके उपयोग से कोई लाभ होते नहीं देखा तो वे उसे छोड़ रही हैं, फिर भारतीय महिलाओं का ठोकर खाने के पूर्व ही सँभल जाना ही श्रेष्ठ होगा।

इन सौंदर्य प्रसाधनों के बढ़ने एवं लोकप्रिय होने का अर्थ है स्वास्थ्य के नियमों की अनभिज्ञता। जिन व्यक्तियों में विशेषकर महिलाओं में यदि थोड़ा सा विवेक है तो वे इन सौंदर्य प्रसाधनों का बहिष्कार ही करेंगी।

हमारी जीवन-पद्धति में बुराइयाँ बढ़ने लगीं तो नारी जीवन भी उससे अछूता न रह सका और वे अंततः पुरुषों की दासी, भोग-विलास की सामग्री और न जाने कैसी हेय वस्तु सी बनकर रह गई है। अशिक्षा, परदा, अंधविश्वास, आलस्य, विलासिता, फैशनपरस्ती आदि अनेकों बुराइयाँ उनमें और बढ़ीं हैं। इन सबसे बड़ी बुराई रही उनकी आभूषणप्रियता, जिसने न केवल हमारे आर्थिक संतुलन को बिगाड़ा

वरन उससे अनेकों सामाजिक बुराइयों का प्रचलन हुआ। स्त्रियों की कार्यक्षमता घटी और मानसिक कमजोरियाँ बढ़ने लगीं। यह बहुत बड़े दुःख की बात है कि हमारी बहू-बेटियाँ अब मातृत्व के गुणों से दूर होती जा रही हैं और नित्य नये श्रृंगार आभूषणों की माँग कर, राष्ट्रीय ढाँचे को असंतुलित बनाने में लगी हैं।

हमारी संतानें ज्ञानवान, धर्मवान, धनवान और शक्तिसंपन्न बनें, इसके लिए स्त्रियों का जीवन विलासिता की सामग्री से नहीं गुण, शिष्टता एवं सहिष्णुता से ओत-प्रोत होना चाहिए। स्त्रियाँ शिक्षित हों, विचारवान हों तभी उनसे राष्ट्रनिर्माण के कार्यक्रमों में सहयोग की आशा की जा सकती है। इसके लिए सर्वप्रमुख आवश्यकता तो यही है कि वे ऐसी संकीर्ण विचारधाराओं से उन्मुक्त हों और परिवार राष्ट्रहित की ओर उनका ध्यान अधिक से अधिक रहे।

यह युग हमारे विकास का युग है। राजनीतिक स्वाधीनता मिले हुए हमें काफी दिन हो गए, पर

परंपरागत कुरीतियाँ अभी ज्यों की त्यों हैं। इन्हें दूर करने से ही अपनी सर्वांगीण उन्नति का द्वार खुल सकता है। यह उन शिक्षित नारियों के लिए आह्वान है कि वे भारतवर्ष के आर्थिक तथा नैतिक स्तर के विकास में अपना सहयोग दें। इस पुण्य कार्य के लिए सुवर्ण या रजत के आभूषणों की आवश्यकता नहीं, वरन उन्हें दैवी गुणों से अलंकृत होना होगा। गुण ही नारी का सच्चा आभूषण है। शीलवान होना किसी भी अलंकार से बढ़कर है। अब उन्हें ऐसे ही गहने ग्रहण करने चाहिए। शृंगारिकता को बढ़ाने वाले गहने छोड़कर, पवित्रता की अभिवृद्धि में समर्थ आभूषणों को अपनाने की आवश्यकता है क्योंकि नारी शृंगारिकता नहीं, पवित्रता है।



हमारा युग निर्माण सत्संकल्प

यह सत्संकल्प सभी आत्मनिर्माण, परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण के साधकों को नियमित पढ़ते रहना चाहिए। इस संकल्प के सूत्रों को अपने व्यक्तित्व में ढालने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। इन सूत्रों की व्याख्या 'इक्कीसवीं सदी का संविधान' पुस्तक में पढ़ें।

- ✧ हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।
- ✧ शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
- ✧ मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
- ✧ इंद्रियसंयम, अर्थसंयम, समयसंयम और विचार-संयम का सतत अभ्यास करेंगे।
- ✧ अपने आप को समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।

- ✧ मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।
- ✧ समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।
- ✧ चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।
- ✧ अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।
- ✧ मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।
- ✧ दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।
- ✧ नर-नारी के प्रति परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।
- ✧ संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य-प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।

- ✧ परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।
- ✧ सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।
- ✧ राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।
- ✧ मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है—इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे, तो युग अवश्य बदलेगा।
- ✧ 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा, हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।



चिंतन बिंदु

- * उन्हें मत सराहो जिनने अनीतिपूर्वक सफलता पाई और संपत्ति कमाई।
- * अपना मूल्य समझो और विश्वास करो कि तुम संसार के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हो।
- * सार्थक और प्रभावी उपदेश वह है जो वाणी से नहीं, अपने आचरण से प्रस्तुत किया जाता है।
- * हम उत्कृष्ट बनें, दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँ।



मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)